© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 2 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण चेतना एवम् सरक्षंण : एक दृश्टि

Dhirendra Kumar Singh
Vill- Chhoti Bakawal,
Dist- Mau, Uttar Pradesh, India

पर्यावरण शब्द परि + आ + , वृ से निष्पन्न है जिसका अर्थ है जो, चारों ओर से घेरे हुए हैं। हिन्दी में इकोलॉजील के समानान्तर शब्द 'परिवेश' या परिस्थिति है। इन्हीं से पारिवेशिक या परिस्थिति की शब्द बनते हैं। पारिवेशिक तंत्र, या पारिस्थिति की तंत्र तथा पारिवारिक सन्तुलन या पारिस्थितिकी सन्तुलन जैसे शब्द पयावरण सम्बन्धी ग्रन्थों में खूब प्रयुक्त होते हैं। इस शब्द की व्युत्पत्ति दो ग्रीक शब्दों से मिलकर हुई जिसका अर्थ होता है 'स्टडी ऑफ होम' ग्रीक भाषा का शब्द आइ सोम जिसका अर्थ गृह होता है वही इकोलॉजी के मूल में है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग जमन विद्वान 'अर्नेष्ट हेकेल' ने 19 वीं शताब्दी में किया था। जर्मन भाषा का 'इकोलॉजिक शब्द में उपर्युक्त 'एस्कोस' का मूल संस्कृत के ओकस में खोजा जा सकता है जो ऋग्वेद एवं अर्थवेद में भी उपलब्ध है।

पर्यावरण असन्तुलन से जुड़ी समस्या है[1] प्रदूषण की प्रदूषण के लिए अंग्रेजी में 'पोल्यूशन' शब्द है। प्रदूषण का तात्पर्य है जल, थल, वायु में अवांक्षित एवं हानिकारक पदार्थों का सम्मिलन अवांक्षित एवं उपयोगी पदार्थों की कमी या विलोम अवांक्षित तथा अपशिष्ट पदार्थों के पैदा होने तथा एतत्रित होने से जल–भूमि पर दूषित प्रभाव पड़ता है। इससे जड़, चेतन के स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं कल्याण पर बुरा प्रभाव पड़ता है। पर्यावरण सन्तुलन की समस्या मानव द्वारा उपजी है तथा मानव को ही सुलझानी है क्योंकि पर्यावरण और मानव का गहरा सम्बन्ध है। पर्यावरण की गुणवत्ता प्रदूषण से बिगड़ गई है।

हमारे ऋषियों, मुनियों ने प्रकृति का श्रृंगार, संरक्षण एवं परिवर्धन अपनी प्रज्ञा एवं प्रकृति मानव के सम्बन्धों को भावनात्मक स्पर्श देकर व्यापक बनाया था, हमारे ऋषियों ने पृथ्वी को माता, आकाश को पिता, प्रकृति को मातृवत्सला चन्द्रमा को चन्दामामा, नदियों को सादर देवतुल्य सम्मान, पेड़–पौधों को पर्वों पर पूजन एवं उसके द्वारा आदान–प्रदान एवं परस्परता का जो संस्कार मनुष्य मात्र को दिया। वही आदर्श संस्कार आज मानव की पीड़ा प्रकृति के तिरस्कार एवं विजय प्राप्त करने की भावना को प्रकृति के स्वाभाविक स्नेह को तोड़ने की हीन भावना, चारों ओर भय आक्रोश प्राकृतिक प्रकोपा, एवं चीत्कार ने प्रकृति के समक्ष मानव को बौना साबित करने एवं अपने वैज्ञज्ञनिक प्रगति पर गर्व के दम्भ के हास्यपद, असन्तुलन, पुर्नगमन, अर्थात

प्राचीन भारतीय सोच, विचार एवं मन्थन के विष्लेषण पूर पूरे विश्व को सोचने, अनुपालन करने पर विवश कर दिया है।

मनुष्य द्वारा प्रकृति पर सकारात्मक–नकारात्मक दोनों रूपों में सम्बन्ध एवं अर्न्तसंबंध स्थापित हुआ है। उसने अपने अन्तःप्रज्ञा से विविध प्रजातियों के फल–फूल विकसित किये हैं, यही बात जन्तुओं एवं पशुओं की संकर जातियों के सन्दर्भ में है। प्रकृति के सौन्दयै में परिवेश का श्रृंगार हुआ है, किन्तु औद्योगिक विकास की अंधाधुंध दौड़ के फलस्वरूप प्रकृति के संसाधनों का दोहन व शोषण होता है।

यज्ञ–यज्ञादि के माध्यम से देव द्वारा ग्रहित समिधा का देव के प्रति अग्नि में समर्पण, इस पर्यावरण के शोधन का उत्कृष्ट यज्ञ अनेकों छोटे बड़े पर्यावरण के संरक्षण की दैनिक जीवन के यज्ञ यज्ञादि द्वारा ब्राम्ह्णों ने स्वयं करके सामान्य जनों के लिए उदाहरण प्रस्तुत किया। जन्म से लेकर मृत्यु तक हमारे सभी संस्कारों, उत्सवों एवं धार्मिक पर्वों पर हवन करने की परम्परा आज भी हमारे जीवन का एक अंग है जो दुनिया के किसी भी राष्ट्र के संस्कार में नहीं था।

वयुमण्डल भू–भाग और जल मण्डल को चारों ओर से वाुय के खोल से ढ़क लेने वाले आवरण को कहने हैं। ये सभी मण्डल गुरूत्वाकर्षण से एक दूसरे से बँधे हैं। पृथ्वी अपनी कीली पर घूमने तथा सूर्य के चक्करन लगाने में भी संतुलित रहती है। पृथ्वी का वह भाग जहाँ जीवन संभव है जहाँ मनुष्य जीव जन्तु पेड़ पौधे रहते हैं उसे जैवमण्डल (बायोस्फीयर) कहते हैं। इस जैवमण्डल के अन्तर्गत, जल, स्थल, वायु तीनों मण्डल आ जाते हैं। इस पर्यावरण में मनुष्य रूप से पृथ्वी, जीवजन्तु, वनस्पति एवं वायु, सूर्य, चन्द्र, जल, आकाश, इत्यादि परस्पर सम्बन्धित है जब तक तत्व या अवयव का सुन्तुलन गड़बड हो जाता है, तो दूसरा अपने आप असन्तुलित हो जाता है। अथर्ववेद में कवि एवं दार्शनिकों ने पृथ्वी को माता की संज्ञा दी है।

मता भूमिः पुत्रों अहम् पृथिव्याः[2]

उपनिषदों के मातृदेवोभव वाक्य का अर्थ केवल जननी की सेवा करना मात्र नही ंरह जाता अपितु धरती माँ की सेवा सुरक्षा का भाव अभिव्यक्त करता है। मनुष्य इस धरती का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है–धरती माँ को देवता मान उसके प्रति आदर व प्रेम से उसका ह्रदय लबालध, रहेगा तभी धरती का संरक्षण होगा, 'पुत्र कुपोत्रो भवेत् माता कुमाता न भवति' अर्थात पुत्र–कुपुत्र बनकर धरती माँ के सौन्दर्य को उसके अस्तितव को मिटाने में लगे हैं।

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ, लोभ मोहादि उसके विवेक को नष्ट कर देती है तब मनुष्य पृथ्वी के साधनों को अंधाधुन्ध दुहने लगता है। चिरपुरातन वैदिक काल में भी यह दुष्प्रवृत्ति उजागर हो गई थी तभी वैदिक ऋषि ने कहा था। मैं जो बोलता हूँ, जो कुछ देखता हूँ वह सब मेरा सहायक हो मैं प्रकाशवान तेजस्वी, दीप्तिमान, और ज्ञानवान होकर जो हमारी भूमि को दूह लेते हैं उनका नाश करता हूँ। आधुनिक वैज्ञानिक युग के मानव ने प्रमादवश, असावधानीवश, तथा लोभवश पृथ्वी की उर्वरता, उसकी खानों, तथा जलस्त्रोत्रों का

अपनी असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दोहन किया है। दूसरी ओर पृथ्वी को 'औद्योगिक विकास, बढ़ती हुई जनसंख्या, वनों का नाश, मृदा अपरदन, इत्यादि अनेक ऐसे कारण है जो पृथ्वी को अधिकाधिक पैमाने पर प्रदूषित कर चुके हैं। परिणामस्वरूप **Save our Earth** पृथ्वी बचाओ' आज गर्णमंदी गुहार बन गया है।

अथर्ववेद के भूमि सूक्त के ऋषि की मान्यता है कि भूमि की रक्षा जैवमण्डल का संरक्षण, तन्द्राहीन व आलस्य रहित व्यक्ति ही करते हैं।

अर्थात् स्पप्न रहित जिस भूमि को पृथ्वी को पमादरहिता क`साथ्ज्ञ 'विश्वदा' रखते हैं वह प्रिय मधु हमारे लिए, दुहने पर दे तथा हमको 'वर्चस' (तेज) से सींचे। भाव यह है कि जब जैवमण्डल रक्षित रहता है, प्रदूषणमुक्त रहता है, तब मनुष्य को उसके हितकर (मधुपूर्ण) पदार्थ प्रचुरता से मिलते हैं। उसके तेज में परिपूर्णता आती है। इस तरह से वेद में मानव एवं पृथ्वी का सम्बन्ध बहुत ही रागात्मक है। जब राक्षस प्रतिकूल कर्म करते हैं तब उसका भार बढ़ जाता है तब वह सृष्टि के रचयिता से प्रार्थना करती है कि 'मेरा भार कम करो' तब विभिन्न अवतार रूपों में विष्णु आते हैं और उसकी रक्षा करते हैं।

भूमि प्रदूषण का अर्थ है कि भूमि की उर्वरा शक्ति को खत्म कर देना, उसकी हरित चादर को नष्ट कर देना तथा अनेकों अपशिष्टों से उसे विषमय बना देता है। भू–विज्ञान इन्हें निम्न सतह (gaseous water layer)मध्य सतह (Metalic Layer) तथा ऊपरी सतह (Soil Layer) कहते हैं। आज अपने विकास–यात्रा के क्रम में मनुष्य ने नितान्त असंवेदनशीलता से भूमि की इन तीनों सतहों को नष्ट, प्रदूषित एवं विषैली बना डाला है।

अथर्ववेद में वर्णित इस माटी की गंध मिट्टी की स्वाभाविक सुगन्ध को कीटाणुनाशकों एवं कृत्रिम खादों से नष्ट कर दिया गया है। वास्तव में यह मिट्टी की गंध 'संस्कृति' की गंध है जिसे संशोभित होकर जन–जन एक दूसरे को मित्र दृटि से देखता है। जहाँ मित्रता होती है वहीं धारा एक परिवार बन जाती है।तब प्रदुषण शोष्ण तथा दोहन प्रश्न ही नहीं उठता।

आज पर्यावरण प्रदूषण असन्तुलन से निरन्तर पृथ्वी के आवश्यक पोषक तत्तों की कमी से पृथ्वी की उर्वरता कम हो रही है जो पृथ्वी को जल्दी ही 'बन्ध्या' बना देती है। इसीलिए कृषि अन्न उत्पन्न करने वाली[3] समस्त औषधियों की माता पृथ्वी को बार–बार प्रणाम करते है। अन्न मनुष्य के जीवन का आधार है।

अन्न प्रदा धरती संरक्षित होकर ही मनुष्य के लिए शिव वृद्धि प्रदान करने वाली भर्ग, वर्च, जन, द्रविण , मधु, पयः, उर्जा, प्राण, आयु, वसु आदि प्रदान करने वाली होती है। प्रदूषित पृथ्वी रोगों को जन्म देती है। क्षयरोग पैदा करती है, दीर्धायुष्य, का नाश करती है जैसा आज हो रहा है। उसकी उर्वरता में कमी आती है तब 'कामदुधा' धरती में न्यूनता आ जाती है विकृतियाँ आ जाती है। व्यक्तिगत स्तर पर मनुष्य भी ऋत (नियम)

का पालन कर पृथ्वी के गुणों को संरक्षित करने में सहायता कर सकता है। ऋत के अतिरिक्त यज्ञ भी भू–संरक्षण का एक सशक्त माध्यम है।

सप्तसत्रेणवेधसों यज्ञेन सह

आधुनिक युग में भी यज्ञ के धूम तथा भस्म के प्रयोग से कृषि उपज तथा वृक्षों में फलों की प्रचुरता पाई गई है तभी यजुर्वेद कहता है।

कृषिश्च में यज्ञेन कल्पताम्

धरा के भीतर जल को फिलट्रेशन और डिकांनटेशन (Filtratoin & Decanfation)स्वतः होता रहता है। मनुष्य की कारगुजारियों से ये जल अपनी निर्मलता खोकर विषस्वरूप हो जाते है। जलचक्र का प्रदुषण वायु को विषाक्त कर देता है यही कारण है कि भूमिसूक्त का ऋषि 'अधर्वभूमिसूक्त की प्रारम्भिक ऋचा में पर्यावरण संरक्षण के सिद्धांत सीपित करता है। –बृहत् सत्य, मृत, उग्र तप, दीक्षा, ब्रम्हज्ञान तथा यज्ञ। इन सिद्धांत की व्याख्या नहीं की जा सकती पर सारांशतः यह कहा जा सकता है कि ये गुण जो मनुष्य की नैतिकता से सम्बद्ध हैं उसकी आध्यात्मिकता से सम्बन्धित हैं, अधुनिक पर्यावरणविद् धरती के प्रदूषण के लिए 'नगरीकरण' को जिम्मेदार ठहराते हैं।

अतः स्पष्ट है कि 'भूमिप्रदूषण' के मूल में मानवीय दुर्बलताएं हैं। द्वेष, लोभ की प्रवृत्तियां, अदेवत्व, अयज्ञ, अतप, असत्य, अदक्षता, आदि दुगुर्णों ने ही 'भूमि' को अनिवास योग्य बना डाला है। आज मनुष्य चाँद, मंगल पर निवास की सोच रहा है। जबकि यह सोचने समझने एवं मंथन करने योग्य बात है कि जहाँ की धरती इतनी सुन्दर, स्वरूप एवं कल्याणकारी थी, या है उस को नरक बना डाला, उसके पश्चात् हम धरती के पर्यावरण के प्रति हिंसात्मक होते–होते ब्राम्हाण्ड के पर्यावरणीय जानकारी के लिए बेचैन है, हम पाशविक वृत्तियों से जहाँ भी रहेंगे, ये वृत्तियाँ हमें किसी भी ग्रह, पर चैन पूर्वक नहीं रहने देगी। अरबों वर्षों के संघर्ष, विकास एवं पर्यावरणीय संस्कार को विकृत करके उसके विध्वंसकारी स्वरूप से हम अभी उबरे नहीं हैं और दूसरे ग्रहों पर जैवीय एंव जैवीय वायुमंडल के प्रति हम अपना अरबों रूपया मात्र अन्तर्राष्ट्रीय कोषों से अपव्यय कर रहे हैं। ध्यानपूर्वक सोचा जाय तो मानसिक प्रदूषण ज्यादा है, यही धरती हमारे केवल परिष्कृत विचारों एवं क्रियाओं से सदियों से रहने योग्य भी है एवं रहेगी।

1996 में विश्व पर्यावरण दिवस पर अपने भाषण में दलाई लामा ने इस पृथ्वी का जीवन हमारा जीवन है, इसका भविष्य हमारा भविष्य है। किसी शायर ने ठीक ही कहा है **खाक का पुतला बना और खाक से परहेज है**। वास्तव में आधुनिकता ने हमें धूल मिट्टी से परहेज सिखाया परन्तु मिट्टी में खेल कर एवं मिट्टी खाकर तथा लोटकर जो बच्चे एवं माटी के प्रति उत्सर्ग करने एवं उसके कर्ज चुकाने की भावना भी पैदा होती है।

वत आ वातु मेषजेः।

प्राण आयूंषि तारिषत।।

वायु में आक्सीजन की कमी से दम घुटने लगता है, आक्सीजन ही वास्तव में प्राण वायु है। अधिक रूग्णता की स्थिति में आधुनिक चिकित्सक आक्सीजन पढ़ाकर ही मृतप्राय जीवन में प्राण भर देता है।

आन्तरिक्ष मांहिंसी–अन्तरिक्ष की हिंसा मत करो। वायु जो अन्तरिक्ष में विचरता है उसे हिंसिन्त और प्रदूषित न करने का आदेश है। वायु अपने वीर रूप में भयंकर भी हो जाता है।

प्रकृति के सभी तत्व मूलरूप में शोधक है। प्रकृति में सूजन–विनाश की प्रक्रिया चलती रहती है। जल, पावक, पवन सभी अपनी–अपनी सामर्थ्यनुसार प्राकृतिक प्रदूषणों को शोधते रहते है।

वायु ही बादलों को उड़ाकर लाता है–जल बरसाने को प्रेरित करता है ऐसी हवाएँ वेद में मरूत कहलाती है। वास्तव में जल तथा वायु दोनों ही कम्पनों को प्रेषित करते है। ये कम्पन, दृश्य, अदृश्य, शारीरिक, मानसिक दोनों तरह के होते हैं।

ज्ञातव्य है कि यज्ञाग्नि में जिन द्रव्यों की आहूति दी जाती है उनमें प्रधान रूप से सुगन्धित कस्तुरी, केसर, अगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल, गुग्गल एवं जावित्री आदि तथा पुष्टि कारक (घृत, दूध, फल, चावल गेंहूँ तथा उड़द इत्यादि औषधियों का प्रयोग किया जाता है) मैत्रायणी संहिता में कहा गया है कि देवदार गुग्गुल को शुद्ध एवं पुष्टिकारण्क प्राण वायु की उपलब्धि होती है। यजुर्वेद में कहा गया है कि अग्नि में छोड़ी गयी आाहूतियाँ, जल, वायु, एवं औषधियों के साथ मिलकर सबको आन्नन्दित करती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

(1) Polution,वेदों में पर्यावरण संरक्षण, डॉ प्रवेश सक्सेना

(2) इराक भरूचाः पर्यावरण समस्याएं

(3) अथर्ववेद 12.12